विजय बहादुर सिंह से बातचीत

मैं व्यक्तिवाद का विरोधी रहा हूं

एक बहुत पुश्तैनी किस्म के साधारण किसान परिवार में जन्मे, किन्तु गवई पाठशाला से महानगर कलकत्ता के विराट जीवन में अपनी किशोरावस्था को गुजारकर, आचार्य नंददुलारे वाजपेयी की छत्रछाया में साहित्य की साधना करते हुए अपने छात्र जीवन से ही विजयबहादुर सिंह ने वह रेखा खींचनी शुरू कर दी थी जिसके एक छोर पर उनके देशी अनुभव तो दूसरे छोर पर आधुनिक जीवन को गति और रूप देने वाले विचार थे। जिस तरह आज आधुनिकता बनाम भारतीयता का प्रश्न महत्वपूर्ण हो उठा है, उसी तरह उन दिनों आधुनिकता और परम्परा का सवाल बेहद चर्चित था। विजयबहादुर सिंह ने अपने आचार्यों की विचार परम्परा से प्रेरणा और ऊर्जा ग्रहण करते हुए आधुनिकता की परंपरा के ही अगले विकास सोपान के रूप में रेखांकित किया। अपने आचार्यों की तरह उन्होंने अनुभवों और विचारों की देशी भावभूमियों की पुरजोर वकालत करते हुए अंधविश्वासों और रूढ़ियों के प्रति निरंतर अपनी असहमति प्रकट की और पश्चिम की ओर खुलने वाली खिड़कियों और दरवाजों के प्रति एक सतर्क किन्तु उत्सुक दृष्टि बरकरार रखी। साहित्यिक जीवन की शुरुआत काव्य-लेखन से करते हुए अचानक एक दिन वे धूमिल और राजकमल चौधरी के काव्य-पाठक के रूप में उभरकर "नये कवि का दृष्टिकोण" शीर्षक आलोचनात्मक लेख लेकर उपस्थित हुए जिसे अतिप्रतिष्ठित आलोचना पत्रिका "आलोचना" के संपादक शिवदान सिंह चौहान ने स्वातंत्र्योत्तर विशेषांक में प्रकाशित कर नए आलोचक विजय बहादुर सिंह के ऐतिहासिक प्रवेश की घोषणा की। "कल्पना", "ज्ञानोदय", माध्यम और नयी कविता जैसी पत्रिकाओं में छपते-छपते विजय बहादुर सिंह ने "लहर" (अजमेर) जैसी प्रतिष्ठित पत्रिकाओं के पन्नों पर एक आलोचक के रूप में अपनी उल्लेखनीय उपस्थिति दर्ज की।

कई विवादास्पद शोध निबंधों, चर्चित समीक्षाओं, वृद्धत्रयी, "नागार्जुन का रचना संसार", "नागार्जुन-संवाद", "जनकवि" जैसी बहुमान्य कृतियों के लेखक और संपादक के रूप में अपनी प्रतिष्ठा अर्जित करने वाले डॉ. सिंह ने न केवल जनवादी लेखकों के संगठन का बरसों तक प्रादेशिक और राष्ट्रीय स्तर पर नेतृत्व करते रहे, बल्कि ऐसे लेखक समूहों के कठमुल्लेपन और वैचारिक सम्प्रदाय बद्धता की खुलकर आलोचना भी की। हिन्दी आलोचना में "राष्ट्रीयता और मार्क्सवाद", गांधीवादी का सौंदर्यशास्त्र जैसे नए और विवादास्पद साहित्य पदों पर विचार करते हुए उन्होंने अपने माडल कवि के रूप में यदि एक ओर वामपंथी नागार्जुन को चुना तो दूसरी ओर जनपक्षधर लोकतांत्रिक चेतना के कवि भवानी प्रसाद मिश्र को। इस रूप में उन्होंने हिन्दी आलोचना और रचना के क्षेत्र में यह करने का साहस प्रदर्शित किया कि प्रगतिशीलता की ठेकेदारी सिर्फ वामपंथियों के पास नहीं है, वह उन लोगों के पास भी है, जो तिलक, गांधी, लोहिया, दयानंद और विवेकानंद से लगाव महसूस करते हैं। भारतीय समाज की अनेक स्तरीय जटिलता और उसके बीच से अपनी राह निकालनी शक्तियां भी इतिहास की गतिशीलता की पक्षधर हैं। भले ही वे वामपंथी संगठनों की खेमेबंदी से बाहर हों।

अपने इन्हीं विचारों के चलते विजयबहादुर सिंह ने उन हलकों को भी आकृष्ट किया जो कठमुल्ले मार्क्सवाद और संगठनात्मक जड़ता के खिलाफ होकर भी सामाजिक पक्षधरता और विकास के समर्थक रहे हैं। पिछली बार जब डॉ. सिंह गोवा विश्वविद्यालय के स्नातकोत्तर छात्रों और शोध छात्रों के बीच अतिथि आचार्य के रूप में विभाग में आए थे, तो हमने उनसे बातचीत कर एक दस्तावेज तैयार किया जो हिन्दी के पाठकों के लिए मौजूं होगा। कई-कई छोटी-छोटी मुलाकातों के बीच, निरंतर दोस्तों और प्रेमियों से घिरे रहने के बावजूद डॉ सिंह ने प्रश्नों के जो जवाब दिए हैं, वे यहां ज्यों के त्यों प्रस्तुत हैं।

प्रश्न- मैं अपनी बात आपके व्यक्तिगत परिचय से शुरू करना चाहता हूं क्योंकि व्यक्तिगत के निर्माण में उसके परिवेशगत जीवन की अहम भूमिका होती है। विशेषकर रचनाकार को अपनी रचना के लिए ऊर्जा वहीं से प्राप्त होती है। इस संबंध में कृपया आप अपने मूलस्थान एवं शिक्षा-दीक्षा से अवगत कराएं।

मेरा जन्मस्थान "जयमलपुर सेमरी" है, जो कि डॉ. राममनोहर लोहिया की जन्मभूमि अकबरपुर यानी अब अम्बेडकर नगर जनपद से करीब सत्रह किलोमीटर दूर है। पहले अकबरपुर फैजाबाद जनपद के अन्तर्गत आता था।

कक्षा पांचवीं तक की शिक्षा मैंने गांव की पाठशाला में प्राप्त की। नाटक, कविता पाठ एवं गीत गायन प्रतियोगिताओं में काफी रुचि रखता था। लेकिन गणित, विषय में काफी कमजोर था। पिताजी कलकत्ता में आइरन एन्ड स्टील कन्ट्रोल के कार्यालय में लिपिक के रूप में कार्य करते थे और शाम को अपनी आर्य समाज की पुस्तकों की दुकान पर बैठते थे। मैं कक्षा पांचवीं की परीक्षा गांव से उत्तीर्ण करने के बाद 1951 में कलकत्ता आ गया और यहीं से कक्षा 6वीं से दसवीं तक की पढ़ाई की। 1957 में हाईस्कूल की परीक्षा उत्तीर्ण करने के पश्चात् विद्यासागर कॉलेज में क्रमशः इण्टर और बी.ए. में दाखिला लिया जो उन दिनों चार वर्ष का कोर्स था। तब इस कॉलेज का बहुत नाम था क्योंकि यहीं से डॉ. राममनोहर लोहिया और बाबू जगजीवनराम आदि ने शिक्षा ग्रहण की थी। 1961 में मैंने बी.ए. की शिक्षा पूरी कर ली। तब तक पिताजी सेवानिवृत्त हो चुके थे, इस कारण घोर आर्थिक संकट का सामना करना पड़ा।

प्रश्न- इस संकट का सामना आपने किस प्रकार किया?

उस समय मेरे सामने ट्यूशन करने के अतिरिक्त कोई और विकल्प नहीं था। अध्ययन के प्रति रुचि होने के कारण मैं आगे की पढ़ाई जारी रखना चाहता था। इसलिए पूर्णकालिक नौकरी की बात सोच भी नहीं सकता था।

प्रश्न- साहित्य के प्रति अभिरुचि कैसे जागृत हुई?

उत्तर- कलकत्ता में मेरी किताबों की दुकान है। वहां पढ़ने को खूब था। नौवीं कक्षा में प्रोफेसर रघुनन्दन मिश्र द्वारा

लिखित निबंधों की एक किताब "निबंध -नियम" ने मुझे बहुत प्रभावित किया। बाद में मिश्रजी से विद्यासागर कॉलेज में अध्यापक के रूप में मुझे मिले जो कलकत्ता के अन्य अध्यापकों की तुलना में कहीं अधिक अभिरुचि सम्पन्न और कलाप्रेमी थे। वे पं. केशव प्रसाद मिश्र बनारस हिन्दु विश्वविद्यालय के शिष्य थे। मिश्रजी के सान्निध्य में ही मैं सबसे पहले बच्चन, नीरज, दिनकर, सुमन, आचार्य वाजपेयी, राहुल जी और आचार्य किशोरीदास वाजपेयी के दर्शन कर सका।

विद्यासागर कॉलेज में दो साल हिन्दी साहित्य परिषद का सह सचिव और दो साल सचिव रहा। इस तरह चार साल के जीवन में काफी कुछ सीखने को मिला। मिश्रजी को हिन्दू-उर्दू की कविताएं खूब याद थीं। उनकी भाषा में भावुकता थी। ये सब बातें मुझमें आज भी हैं।

बाद में कलकत्ता विश्वविद्यालय में दाखिला लिया तो वहां श्री विष्णुकांत शास्त्री जैसे अध्यापक मिले। शास्त्री जी मेरे पिताजी से स्नेह रखते थे। पिताजी तब बड़ा बाजार आर्य समाज के प्रधान (अध्यक्ष) थे। पं. भगवद वैदिक रिसर्च स्कालर, महात्मा आनन्द स्वामी, श्री प्रकाशवीर शास्त्री को बरसों सुनने का सुयोग तभी मिला। आर्य समाज के वातावरण ने मुझमें तर्क शक्ति जगाई। परंपरा को बौद्धिक दृष्टि से देखने की प्रवृत्ति पैदा की। मुझमें तभी से एक उन्मुक्तता, तर्कशक्ति और बौद्धिकता आई। किन्तु परंपरा के प्रति कुछ अतिरिक्त आग्रह का भाव भी आ गया, जो अब भी झलक ही जाता है।

कलकत्ता से बी.ए. (आनर्स) हिन्दी में करके जुलाई में मैं सागर आ गया। एक साल की पढाई को तिलांजलि दे दी। वहीं मेरा सच्चा साहित्य संस्कार हुआ।

प्रश्न- अधूरी शिक्षा छोड़कर आप सागर क्यों चले गए?

उत्तर- डॉ. कृष्णबिहारी मिश्र ने मुझे सलाह दी कि मेरे जैसे प्रतिभाशाली युवक के लिए कलकत्ता का वातावरण उपयुक्त नहीं है। उन्होंने आचार्य नंद दुलारे वाजपेयी के नाम एक पत्र दिया और उसे लेकर मैं सागर आ गया। डॉ. कृष्ण बिहारी मिश्र ने पिताजी को समझाया कि लड़का बहुत प्रखर बुद्धि का है। सागर में रहेगा तो इसकी प्रतिभा का और विकास होगा, इसलिए आप लोग इसको वहीं जाने दें तो बेहतर होगा। पिताजी और बड़े भैया प्रतिमास सौ रुपए भिजवाया करते थे।

प्रश्न- हां तो मैं आपकी शिक्षा-दीक्षा की बात कर रहा था। एम.ए. की शिक्षा के बारे में कुछ बताइए?

उत्तर- 1963-64 में मैंने सागर विश्वविद्यालय (मध्य प्रदेश) से हिन्दी में प्रथम-श्रेणी प्राप्त कर पूरे कला संकाय में प्रथम स्थान प्राप्त किया। एम.ए. करने के बाद पुनः कलकत्ता आ गया और लगभग तीन महीने ही हुये थे कि आचार्य वाजपेयी का पत्र आ गया और मैं पुनः सागर आ कर शोध कार्य में लग गया।

प्रश्न- सागर आने के बाद आपने क्या किया? कृपया अपनी सागर की गतिविधियों के बारे में कुछ बताइए?

प्रश्न- आगे की पढाई जारी रखते हुए मैंने आचार्य नंददुलारे वाजपेयी के अन्तर्गत "आधुनिक हिन्दी कविता की वृहत्त्रयी का तुलनात्मक समीक्षण" विषय पर शोध कार्य प्रारंभ कर दिया। इसके लिए मुझे पहले दो सौ और बाद में दो सौ पचास रुपये की यू.जी.सी. शोध छात्र-वृत्ति के रूप में मिलने लगे। शोध कार्य करते हुए मैंने हिन्दी विभाग में "इड़ा परिषद" का गठन किया जिसके अध्यक्ष वाजपेयी जी थे और मैं उसका सचिव। यह "परिषद" हिन्दी छात्रों की शोध परिषद थी। परिषद का पहला परिसंवाद 1965 में हुआ, जिसकी अध्यक्षता आचार्य वाजपेयी ने की। प्रो. शिवकुमार मिश्र, प्रो. राममूर्ति त्रिपाठी और मैंने "आधुनिकता और हिन्दी कविता" विषय पर प्रपत्र पढ़ा। आचार्य नंद दुलारे वाजपेयी के सान्निध्य में रहते हुए मुझे बहुत कुछ सीखने को मिला। मैं गुरुजी के निजी सचिव के रूप में भी कार्य करता था। 1965 में वाजपेयी जी विक्रम विश्वविद्यालय में कुलपति के रूप में नियुक्त हुए। कुछ दिन सागर रहने के बाद 1966 में मैं भी उनके पास उज्जैन चला गया। इसी बीच मेरी नियुक्ति एस.बी.आर., कॉलेज बिलासपुर में हिन्दी प्रवक्ता के रूप में तार से हुई। कॉलेज की प्रबंध समिति में कुछ आंतरिक गड़बड़ियां थीं, जिसके कारण मात्र दस दिन ही वहां रह पाया। वाजपेयी जी ने मुझे पुनः अपने पास वापस बुला लिया और मैं उनके निजी सचिव के रूप में कार्य करने लगा। उन्होंने शोध छात्रवृत्ति की समय-सीमा भी बढ़वा दी जो बंद हो गई थी।

प्रश्न- इसका मतलब है कि उज्जैन आने के बाद भी आप शोधकार्य में लगे रहे तो फिर आपको पी.एच.डी. की उपाधि कब प्राप्त हुई?

उत्तर- वैसे तो मैंने अपना शोधकार्य 1966 में ही पूरा कर लिया था, लेकिन पी.एच.डी. की उपाधि मुझे जून 1967 में प्राप्त हुई। इस समय तक मुझे कोई नौकरी नहीं मिली थी, इसलिए वाजपेयी जी के निजी सचिव के रूप में कार्य करते हुए उनके साथ विभिन्न विश्वविद्यालयों एवं अन्य जगहों की यात्राएं करता रहता था। उनके पत्रों का उत्तर देना, शोध की रिपोर्ट एवं अन्य सहयोगी लेखन कार्य भी करता था। 21 सितंबर 1967 में वाजपेयी जी का निधन हो गया। इस घटना से मैं बहुत दुःखी हुआ। गुरुजी के पितृवत स्नेह की मधुर स्मृतियां ही शेष रह गईं। इसके बाद मैं विदिशा में सेठ सिताबराय लक्ष्मीचंद जैन महाविद्यालय में हिन्दी प्रवक्ता के रूप में कार्य करने लगा। 1968 में स्नातकोत्तर खुलने के बाद सहायक प्राध्यापक हो गया और कालान्तर में हिन्दी विभागाध्यक्ष 1979 से सितम्बर 1995 तक प्रोफेसर के रूप में कार्य करने के पश्चात् सम्प्रति, उच्च शिक्षा उत्कृष्टता संस्थान बरकतउल्ला विश्वविद्यालय, भोपाल (म.प्र.) में प्रोफेसर एवं हिन्दी विभागाध्यक्ष के रूप में कार्य कर रहा हूं।

प्रश्न- आपने लेखन की शुरुआत कब की?

उत्तर- वैसे तो मैं अध्ययन के दौरान ही कुछ-न-कुछ लिखता रहता था, लेकिन प्रकाशन की दृष्टि से मेरा पहला आलेख "नए कवि का दृष्टिकोण" 1966 में "आलोचना" पत्रिका में प्रकाशित हुआ। उस समय इसके सम्पादक शिवदान सिंह चौहान थे। दूसरा शोध पत्र "मनु प्रसाद के अहं पात्र" सागर विश्वविद्यालय की "मध्य-भारती" शोध पत्रिका में प्रकाशित हुआ, जिसका संपादन डॉ. रामरतन भटनागर करते थे।

विदिशा आने के पूर्व मेरी रचनाएं "ज्ञानोदय" (कलकत्ता) "लहर" (अजमेर) कल्पना (हैदराबाद) आदि पत्रिकाओं में छपने लगी थीं। जिसका संपादक क्रमशः रमेश बक्षी, प्रकाश जैन और बद्री विशाल पित्ती किया करते थे। कालांतर में मेरा शोध प्रबंध "आधुनिक हिन्दी की वृहतयी" 1975 में प्रकाशित हुआ और इसके बाद "नागार्जुन का रचना संसार" "नागार्जुन-संवाद" और "जनकवि" जैसी कृतियां प्रकाशित हुईं। इसके पूर्व प्रस्थान

कवि डॉ. शिवमंगल सिंह सुमन के साथ "छायावादोत्तर काव्यधारा" पुस्तक का संपादन भी किया। यह डॉ. सुमन की उदारता ही थी कि भूमिका में उन्होंने मुझे अपना नाम डालने की अनुमति दी क्योंकि तब वे कुलपति थे और मैं एक अदना सा अध्यापक और नवजात लेखक।

प्रश्न- आपकी एक और ख्याति साहित्य के व्याख्याता और विचारक की भी है?

उत्तर- हां! कुछ लोग ऐसा मानने और कहने लगे हैं। लोग समाज जो कहे सिर-माथे लगाना ही पड़ता है। और अब तो जगह-जगह के लोग बुलाने लगे हैं, अखबार छापने लगे हैं।

देश के विभिन्न विश्वविद्यालयों के हिन्दी विभागों एवं संस्थाओं में अतिथि प्राध्यापक के रूप में एवं हिन्दी पुनश्चर्या पाठ्यक्रमों एवं संगोष्ठियों में विषय विशेषज्ञ के रूप में हिन्दी साहित्य के विभिन्न विषयों पर व्याख्यान देता रहता हूं। यह क्रम अब भी जारी है तो मानना होगा कि फिर कुछ तो है।

प्रश्न- आप मूलतः किस विचारधारा से प्रभावित हैं? और क्यों?

उत्तर- हमारे देश में मुख्यतः दो प्रकार की विचारधाराएं कार्य कर रही हैं। दक्षिण पंथी विचारधाराएं जो कि यथास्थिति का समर्थन करती हैं। मैं इसका विरोध करता हूं। दूसरी विचारधारा है- वामपंथी, जो कि परिवर्तन चाहती है। मैं परिवर्तनवादी हूं और इसी में विश्वास करता हूं। जो समाज मुझे मिला है, मैं उससे संतुष्ट नहीं हूं और उसे बदलना चाहता हूं। इसलिए भारत के समाज में परिवर्तनवादी विचारों का मैं समर्थन करता हूं।

प्रश्न- आप किन-किन रचनाकारों एवं विचार दर्शनों से अधिक प्रभावित हुए? और क्यों?

उत्तर- मैं माखनलाल चतुर्वेदी, बालकृष्ण शर्मा "नवीन", निराला, मुक्तिबोध, नागार्जुन, प्रेमचंद, फणीश्वरनाथ रेणु आदि रचनाकारों से विशेषरूप से प्रभावित हुआ। क्योंकि इन लोगों का दृष्टिकोण समाजोन्मुखी है, ये लोग परिवर्तन में विश्वास रखते थे। मैं व्यक्तिवाद का विरोधी रहा हूं, और कलावाद का भी। कलावाद कलाओं की धार को कुन्द करता है।

मार्क्सवादी, लेनिन और लोहिया के विचारों का मैं विशेष रूप से समर्थक रहा लेकिन अपने को पूरा मार्क्सवादी नहीं मानता। मैं गांधी जी की विचारधारा से भी प्रभावित हुआ। भारत को जानने के लिए लोहिया और गांधी को जानना जरूरी है। मैं गांधी लोहिया की बुनियाद पर सोचता हूं, परंतु मार्क्सवाद को अस्वीकार नहीं करता। आज इन लोगों की विचारधारा का प्रभाव हमारे समाज में कम हो गया है। एक तरह से स्थिरता आ गई है, उसमें मैं उथल-पुथल देखना चाहता हूं। इसके लिए मैं कविता विधा विशेष रूप से उपयुक्त मानता हूं। आजकल लोग निजी स्वार्थों की जकड़बंदी से घिर गए हैं। गुस्सा आता है निजी स्वार्थों के प्रति न कि लोगों के प्रति। हमारे पास आवेगों की कमी नहीं है, लेकिन हम स्वार्थों से मुक्त नहीं हो पा रहे हैं। कविता ही ऐसा माध्यम है जो कि लोगों को इस अंधकार से निकाल कर प्रकाश पैदा कर सकती है।

प्रश्न- आप कतिपय लेखक संघों से भी जुड़े रहे, उसके विषय में कुछ कहना चाहेंगे?

उत्तर- पहले मैं "प्रगतिशील लेखक संघ" से जुड़ा था। कालांतर में जनवादी लेखक संघ से इससे मैंने बड़े-बड़े परदों पर भी कार्य किया। "मध्य प्रदेश जनवादी लेखक संघ" का मैं 7-8 वर्ष तक प्रादेशिक अध्यक्ष रहा। इसके अतिरिक्त "अखिल भारतीय जनवादी लेखक संघ" का लगभग चार वर्ष तक राष्ट्रीय सचिव मंडल का सदस्य भी रहा। "नयापथ" पत्रिका के संपादक मण्डल में भी कार्य किया।

जनवादी विचारधारा से प्रभावित होकर मैंने नागार्जुन और भवानी प्रसाद मिश्र को खूब पढ़ा और कतिपय पुस्तकें भी प्रकाशित कीं और आज भी उन पर कार्य कर रहा हूं। अध्ययन के दौरान मैंने यह पाया कि ये दोनों रचनाकार जनपक्ष धारता के कवि हैं और दोनों की काव्यचेतना में परिवर्तन के सपने हैं। अभी वह समय नहीं है कि विचारधाराओं की कट्टरता पर विचार करें। आवश्यकता इस बात की है कि तमाम जनपक्षधर ताकतों को इकट्ठा करके पूंजिपतियों की विशाल राक्षसी सेना से टकराएं।

भवानी प्रसाद मिश्र और नागार्जुन विचारों के धरातल पर गांधी और मार्क्स जुड़ते हैं। दोनों की रचनाओं में गांधी-मार्क्स को लेकर आत्ममंथन चलता रहता है। भारत की जनता को आंदोलित करने के लिए गांधी का सहारा चाहिए ही चाहिए। गांधी हमारी युग के महानायक हैं। उनको अनदेखा कर कहां कोई बात की नहीं जा सकती।

प्रश्न- सन् 1970 के बाद गांधीजी की प्रासंगिकता पर प्रश्न चिन्ह लगा है और आज तो उनके विषय में तमाम तरह की कटूक्तियां की जा रही हैं। इस संदर्भ में आप क्या कहना चाहेंगे?

उत्तर- इस संदर्भ में हमें गांधी जी के साथ लोहिया के विचारों को जोड़कर देखना होगा। हमारे यहां का समाज बहुदेववादी है। देश की बहुरंगी परंपराएं हैं। भाषा, जाति, वर्ण आदि की विभिन्नताएं हैं। इसलिए विचारों के धरातल पर बहुत सोच समझकर निर्णय लेना ठीक होगा। यह एक विचार-बहुल और विश्वास बहुल समाज रहा है। फिर भी सहिष्णुता (धार्मिक या वैचारिक) और एकता (जीवन प्रणाली) यहां थोड़ी बहुत असहिष्णुता और अतिवादिता के बावजूद कायम रही है। हमें उम्मीद करनी चाहिए यह आगे भी रहेगी।

प्रश्न- देश स्वतंत्रता की स्वर्णजयंती मना रहा है। इस संदर्भ में विगत पचास वर्षों से साहित्य के विषय में प्रश्न न करके मैं आपसे वर्तमान दशक जो कि लगभग समाप्त होने वाला है। उसकी कविता एवं कथा साहित्य की दिशा एवं दशा पर कुछ जानना चाहता हूं। कृपया इस पर प्रकाश डालें?

उत्तर- साहित्य में खेमाबंदी सम्प्रदायबद्धता की हद तक उतर आई है। लेखन सिर्फ लेखक संगठनों को सदस्यता के बल पर आंका जाये, यह बहुत बुरा होगा। वह एक अपूर्व सृजन है, जिसमें विचार का तत्व भी रहता है। किन्तु किसी विचारधारा से जुड़ जाने से किसी लेखक में सुरखाब के पंख नहीं लग जाते। यह तो उसके शब्दों में निहित अनुभव और अनुभवों में व्याप्त निगाह ही तय करती है कि उसने जो रचा है वह सौन्दर्य और जीवन-मूल्य के बीच कहां ठहरता है। अकेले सौन्दर्य मूल्य या केवल विचार, रीतिवाद या कलावाद को पनपते हैं या फिर विचारधारावाद को जन्म देते हैं, जो ठीक नहीं है। लेखक संगठनों में, मैं कई ऐसों को जानता हूं जो स्वभावतः लेखक नहीं हैं। लेखन की राजनीति करते हुए इन्हीं में से कुछ लोग इन संगठनों का नेतृत्व करते हैं। विचारधारा और लेखन के

बीच इन दलालों की उपस्थिति दोनों के लिए बेहद खतरनाक है।

किन्तु लेखन अब तो सामाजिक प्रतिष्ठा हथियाने की सीढ़ी भी बनता जा रहा है। धूमिल ने काफी पहले इस ओर इशारा किया था। कहा था उस कवि ने कि कविता भाषा में आदमी होने के तमीज है। पर यह तभी पैदा होती है, जब आप जीवन में आदमी हो कई पायेदार कुर्सियों पर बैठकर हर क्षण आदमी के अस्तित्व को नकारने वाले लोग जब कविता या कहानी की तरफ आते हैं तब ये विधाएं भी संदिग्ध हो उठती हैं। "शब्द" अगर "सन्देह और अरुचि के घेरे में आ चुके हैं तो इन्हीं छद्म लेखकों, दलालों और अलेखकों के चलते। शब्द को भरोसेमंद बना पाना हमारे समय की सबसे बड़ी चुनौती है।

यहीं यह भी कहना जरूरी है कि ऊंची डिग्रियों और ढेर सारी किताबों को पढ़ लेने से शब्द की समझ का संस्कार बन ही जाये, कोई जरूरी नहीं है। अक्सर देखा गया है कि संवेदनात्मक शक्ति किसी-किसी में ही होती है। औसत संवेदना और ढेर सारी बौद्धिकता (चतुराई) के बल पर विपुल परिमाण में किया गया लेखन हिसाबी-किताबी लेखन है। यह इन दशकों में खूब पनपा है। इससे अराजकता बढ़ी है और सही सृजन सावन-भादों के सूरज की तरह ढंक गया है। फिर भी अदम गोंदवी जैसे शायरद, उदय प्रकाश जैसे कथाकार एकांत श्रीवास्तव, रविन्द्र स्वप्निल जैसे कवि हमें आश्वस्त करते हैं कि शताब्दी के अन्तिम दशक का जीवन बिल्कुल निराशामय नहीं है।

- डॉ. रवीन्द्र नाथ मिश्र
हिन्दी विभाग, गोवा विश्वविद्यालय,
गोवा-403 206

प्रकाश प्रलय की क्षणिकाएँ

परेशां

परेशां हैं,
श्रीपति ... जी ...
बाहर
"बम विस्फोट"
घर में
श्रीमती ... जी ...

यात्रा

मोटर-कारों
रेल, हवाई यात्राओं में
बम-विस्फोटों की
खबरों से
पड़ोसी डर रहे हैं ...
"यात्रा"
पैदल कर रहे है-

खुश्बू

चंदन की
लकड़ी अपनी
"खुश्बू"
खो रही है-
"वीरप्पन"
हो रही है-

खबर

शिक्षा- विभाग के
गोपनीय प्रश्नपत्रों की
गोपनीयता
भंग करने वालों की
खबर ली जायेगी ..
इसकी भी जांच
गोपनीय की जायेगी ...

भय

श्रीमती जी का भय
तबसे और बढ़ा ...
जबसे
कुछ महिलाओं का दल
"एवरेस्ट" पर
जा चढ़ा-

सूटकेस

बालक के एडमीशन के समय
उनका हृदय
हमारे हर्षद ब्रांड
'सूटकेस' में
खो गया
"एडमीशन"
"इजी" हो गया-

उत्तर

उन्होंने सदन में
शून्यकाल के दौरान

खिलाफ

पाकिस्तान
भारत के खिलाफ
जितना
मुंह-बाता है
उतनी ही
मुंह की खाता है-

अकल

अत्याधुनिक
परीक्षार्थी नकल से
काम चलाते हैं-
"अकल"
सिर्फ छुरा-चाकू
दिखाने में लगाते है-

स्वभाव

कार्यालय का बाबू
मच्छरों के स्वभाव
पर जी रहा है ...
मौका पाते ही
खून पी रहा है-

प्रार्थना

सरकारी कार्यलयों में
लगातार छुट्टी न हो,
ऐसी प्रार्थना
सदैव पड़ोसी करता है ...
साहब से ज्यादा
वह
"मैडम" से
डरता है-

आँसू

लूट-पाट
हत्याओं की
खबर से
आंसू भी
शरमाते हैं- अब
नहीं आते हैं.

-प्रकाश प्रलय